इकाई 12 प्रमुख बृहत् उद्योग

इकाई की रूपरेखा

12.0 उद्देश्य
12.1 प्रस्तावना
12.2 सूती वस्त्र उद्योग
  12.2.1 पंचवर्षीय योजनाओं के दौरान विकास
  12.2.2 उद्योग में निर्गत
  12.2.3 उपभोग का स्वरूप
  12.2.4 वर्तमान प्रवृत्ति
  12.2.5 नई वस्त्र नीति, 2000
12.3 चीनी उद्योग
  12.3.1 पंचवर्षीय योजनाओं के दौरान विकास
  12.3.2 चीनी उद्योग की वर्तमान समस्याएँ
  12.3.3 मिशन मोड परियोजना
12.4 लौह और इस्पात उद्योग
  12.4.1 पंचवर्षीय योजनाओं के दौरान विकास
  12.4.2 उत्पादन और उपभोग
  12.4.3 उद्योग की वर्तमान समस्याएँ
12.5 इंजीनियरी (अभियांत्रिकी) उद्योग
  12.5.1 पंचवर्षीय योजनाओं के दौरान प्रगति
  12.5.2 उद्योग की वर्तमान समस्याएँ
12.6 अन्य प्रमुख उद्योग
  12.6.1 सीमेण्ट उद्योग
  12.6.2 कागज़ उद्योग
  12.6.3 पेट्रो-रसायन उद्योग
  12.6.4 उर्वरक उद्योग
12.7 सारांश
12.8 शब्दावली
12.9 कुछ उपयोगी पुस्तकें एवं संदर्भ
12.10 बोध प्रश्नों के उत्तर अथवा संकेत

12.0 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप :

- भारत में औद्योगिकरण की बदलती हुई संरचना को समझ सकेंगे;
- भारत की औद्योगिक व्यवस्था में विभिन्न उद्योगों का सापेक्षिक महत्त्व जान सकेंगे;
- भारत में स्वतंत्रता पश्चात् विभिन्न प्रकार के बृहत् उद्योगों के विकास की गति का अनुमान लगा सकेंगे;
- बृहत् उद्योगों के सामने आने वाली विभिन्न प्रकार की समस्याओं की व्याख्या कर सकेंगे; और
- भारत में विभिन्न बृहत् उद्योगों के प्रति सरकार के दृष्टिकोण के संबंध में धारणा बना सकेंगे।

12.1 प्रस्तावना

जैसा कि आप पहले (खंड 3 इकाई 7) पढ़ चुके हैं कि भारत को अंग्रेजों से विरासत में एक अत्यन्त ही दुर्बल औद्योगिक आधार मिला जबकि उस समय विश्व के बड़े भाग में उद्योग धंधे फलफूल रहे थे और ग्रेट ब्रिटेन समेत कई देशों में औद्योगिक क्रांति हो चुकी थी। इस तथ्य के बावजूद ऐसा हुआ। स्वतंत्र भारत अपने इस इतिहास को पीछे छोड़ देने के लिए तत्पर था। इसने तीव्र औद्योगिकरण और आर्थिक विकास का मार्ग चुना।

स्वतंत्रता के समय भारत में दो बृहत् उद्योग उल्लेखनीय थे, सूती वस्त्र, इस्पात और कुछ हद तक जूट उद्योग। औद्योगिकरण का मुख्य आधार, अर्थात् पूँजीगत वस्तु उद्योग का अस्तित्त्व नहीं के बराबर था। आर्थिक आयोजना के आरम्भ के साथ (पहली पंचवर्षीय योजना 1 अप्रैल, 1951 को शुरू हुई थी), हम उस दिशा में बढ़े जिसका मुख्य उद्देश्य पूर्व की विकृतियों को दूर करना था।

आरम्भ में, जैसा कि आप पहले खंड 3, इकाई 10 में पढ़ चुके हैं कि भारी उद्योगों के विकास को सर्वोच्च प्राथमिकता दी गई थी (भारी उद्योग वे उद्योग हैं जो मूल पूँजीगत वस्तुओं, अर्थात्, उन पूँजीगत वस्तुओं जो अन्य उत्पादक वस्तुओं के उत्पादन में सहायक होती हैं का उत्पादन करती हैं)।

आर्थिक नियोजन के पहले चार दशकों में कई बृहत् उद्योगों जैसे लौह और इस्पात, इंजीनियरी, सीमेंट, उर्वरक, इत्यादि में उत्पादन क्षमता में तीव्र विस्तार हुआ। उनके बाद में, महत्त्वपूर्ण आदानों जैसे लौह और इस्पात, और विद्युत की आसानी से उपलब्धता के परिणामस्वरूप भारत में व्हाइट गुड्स उद्योगों का असाधारण रूप से विकास हुआ है।

हम संक्षेप में, भारत के कुछ महत्त्वपूर्ण बृहत् उद्योगों की प्रमुख विशेषताओं की समीक्षा करेंगे।

12.2 सूती वस्त्र उद्योग

भारत में सूती वस्त्र उद्योंग पहला आधुनिक उद्योग है जिसके आधार पर औद्योगिकरण की पूरी इमारत तैयार हुई है। सौ वर्षों से भी अधिक पुराना यह उद्योग, जो मुख्य रूप से कताई उपक्रम के रूप में शुरू हुआ था, धीरे-धीरे सम्पूर्ण सम्मिश्र उपक्रम के रूप में विकसित हो गया।

12.2.1 पंचवर्षीय योजनाओं के दौरान विकास

अप्रैल, 1951 में अर्थात् भारत में आर्थिक नियोजन के आरम्भ के समय 378 सूत मिलें थीं, इनमें 103 कताई मिलें और 275 सम्मिश्र मिलें (सम्मिश्र मिल में धागा की कताई, वस्त्र बुनाई और उनका प्रसंस्करण एक ही छत के नीचे होता है) थीं।

पंचवर्षीय योजनाओं के दौरान आम नीति यह रही कि इस उद्योग की कताई क्षमता का विस्तार किया जाए ताकि अर्थव्यवस्था के संगठित और असंगठित दोनों क्षेत्रों को बुनाई के लिए अधिक से अधिक धागा उपलब्ध कराया जा सके। इस नीति के अनुसरण में, पिछले पाँच दशकों के दौरान, सम्मिश्र मिलों की संख्या में मामूली गिरावट आई है जो 1951 में 275 से घटकर इस समय 270 हो गई है। जबकि दूसरी ओर, कताई मिलों की संख्या में नौ गुनी वृद्धि हुई, उनकी संख्या 1951 में 103 से बढ़ कर इस समय 905 हो गई है। इसी प्रकार, जहाँ विगत पाँच दशकों के दौरान उद्योगों में स्थापित तकलियों की संख्या में तीन गुनी से भी अधिक वृद्धि हुई, जो 1951 में 11 मिलियन थी, से बढ़कर इस समय 33.53 मिलियन हो गई है वहीं

स्वचालित करघों की संख्या में कमी आई है जो 1951 में 1.95 लाख थी, से घटकर 1.23 लाख रह गई है।

सूती वस्त्र उद्योग में निवेश की गई पूँजी की राशि 2.70 करोड़ रु. के करीब होने का अनुमान लगाया गया है, निर्गत का वार्षिक मूल्य लगभग 2,500 करोड़ रु. तक है। इस उद्योग में 260 लाख व्यक्तियों को सीधे रोज़गार मिला हुआ है जो संगठित क्षेत्र में कुल रोज़गार का लगभग 20 प्रतिशत है। इस उद्योग द्वारा परोक्ष रूप से कई मिलियन लोगों को रोज़गार मिलता है।

12.2.2 उद्योग में निर्गत

सूती वस्त्र उद्योग में एक-दूसरे से अनन्य और असमान तीन क्षेत्र मिल, हथकरघा और विद्युत करघा सम्मिलित हैं। कपड़ा का विनिर्माण करने वाली मिलें संगठित क्षेत्र में आती हैं जबकि अन्य दो सामान्यतया असंगठित क्षेत्र में शामिल हैं।

साठ के दशक के आरम्भ तक, भारत में अधिक अनुपात में कपड़ा उत्पादन मिल क्षेत्र में होता था (1960 में 72.5 प्रतिशत)। साठ के दशक के मध्य से सूती वस्त्र उद्योग में असंगठित क्षेत्र की भूमिका बढ़ रही है; इस समय, कपड़ा उत्पादन का अधिकांश हिस्सा (लगभग 95 प्रतिशत) इसी क्षेत्र से आता है।

नीचे दी गई तालिका 12.1 में हाल के वर्षों में क्षेत्र-वार उत्पादन दर्शाया गया है।

तालिका 12.1 : भारत में वस्त्र का उत्पादन

	निर्गत में प्रतिशत हिस्सा						
	1994-95	**1995-96**	**1996-97**	**1997-98**	**1998-99**	**1999-2000**	**2000-2001**
मिलें	7.9	6.3	5.6	5.2	5.0	4.4	4.3
विद्युत करघा (होजियरी समेत)	69.0	69.6	71.4	73.0	74.7	75.4	76.5
हथकरघा	21.6	22.5	21.4	20.3	18.8	18.8	19.2
अन्य	1.5	1.6	1.6	1.5	1.5	1.5	--
कुल	**100.0**	**100.0**	**100.0**	**100.0**	**100.0**	**100.0**	**100.0**

स्रोत : आर्थिक सर्वेक्षण 2000-01

तालिका 12.1 में स्पष्ट रूप से देखा जा सकता है कि भारत में वस्त्र के कुल उत्पादन में विद्युत करघों का हिस्सा निरंतर बढ़ रहा है और मिलों का हिस्सा घट रहा है। भारत में सूत का कुल उत्पादन चार गुना से भी अधिक बढ़ा है जो 1950-51 में 53.4 करोड़ कि. ग्रा. से बढ़कर 1999-2000 में 210.1 करोड़ कि.ग्रा. हो गया है।

12.2.3 खपत का स्वरूप

खपत के स्वरूप का अध्ययन दो शीर्षकों के अन्तर्गत किया जा सकता है :

क) वस्त्र के खपत की प्रवृत्ति; और

ख) खपत की संरचना।

पहले के संबंध में, कपड़े की खपत वस्त्र उद्योग में उत्पादन की वृद्धि दर पर सीधे-सीधे निर्भर करती है। कपड़े का उत्पादन जनसंख्या की वृद्धि दर के समरूप नहीं रहा है। विगत पांच दशकों के दौरान कपड़े का उत्पादन लगभग 1.7 प्रतिशत की वार्षिक औसत दर से बढ़ा है जबकि जनसंख्या वृद्धि की वार्षिक औसत दर 2.0 प्रतिशत से भी अधिक रही है। इसके परिणामस्वरूप, पिछले वर्षों में कपड़े की प्रति व्यक्ति उपलब्धता में कमी आई थी और यह 1964-65 में 16.8 मीटर से घटकर 1977-78 में 13.5 मीटर रह गई, किंतु इसके बाद इसमें वृद्धि हुई तथा 1999-2000 में यह 30.6 मीटर तक पहुँच गई।

दूसरे के संबंध में, हमारे देश में कपास की खपत का प्रतिशत सभी फाइबरों और फिलामेंटों की तुलना में लगभग 60 : 40 है। इसका कारण भारत को कपास उत्पादन और इसकी गुणवत्ता के मामले में प्राप्त अन्तर्निहित लाभ है। तथापि, पूरे विश्व में यह अनुपात 50 : 50 है। ऐसा प्रतीत होता है कि हम भी इसी भूमंडलीय प्रवृत्ति की दिशा में बढ़ रहे हैं। ऐसा इसलिए है कि पॉलिएस्टर और ब्लेंडेड फैब्रिक की 'धोइये और पहनिए' (वाश एन वीयर) विशेषता धुलाई और इस्त्री (प्रेस) संबंधी खर्च को कम कर देते हैं।

12.2.4 वर्तमान प्रवृत्ति

वर्तमान नीतिगत सुधारों के मद्देनजर वस्त्र उद्योग में निम्नलिखित कुछ परिवर्तन देखे जा सकते हैं।

i) भारत के कुल निर्यात, वस्त्र उत्पादन और कुल आय वृद्धि में कपास ने अग्रणी-क्षेत्र का स्थान ले लिया है।

ii) घरेलू खपत में सूती वस्त्र की पसन्द अपने स्थान पर बनी हुई है क्योंकि निर्यात के क्रम में घरेलू उत्पादकों ने नई दक्षता प्राप्त की है जिससे नए उत्पाद पेश किए जा सके हैं।

iii) वस्त्र निर्यात और उत्पादन के मामले में अनौपचारिक क्षेत्र ने अग्रणी स्थान ले लिया है।

iv) आदानों और मशीनों के लिए विश्व बाजार में पहुँच द्वारा औपचारिक और प्रकट रूप से अनौपचारिक क्षेत्र की क्षमता में सुधार हुआ है।

v) औपचारिक और अनौपचारिक दोनों क्षेत्रों में इतने अनम्य और नियंत्रित फर्म हैं कि वे अनुकूलनीयता नहीं कर सकते, परिणामस्वरूप विषमतापूर्ण अनुकूलनीयता विद्यमान है। फलस्वरूप उद्योग के सभी प्रमुख क्षेत्रों, जहाँ सुधार हुए हैं, में क्षमता आधिक्य और माँग आधिक्य दोनों साथ-साथ विद्यमान हैं।

vi) लागत संबंधी वैश्विक प्रवृत्ति भारत को मानव निर्मित वस्त्र के क्षेत्र में प्रमुख संभावित उत्पादक बना रही है।

12.2.5 नई वस्त्र नीति, 2000

सरकार ने सत्यम समिति के प्रतिवेदन के आधार पर 3 नवम्बर, 2000 को नई वस्त्र नीति की घोषणा की। यह नई नीति निम्नलिखित दो तथ्यों के पृष्ठभूमि में तैयार की गई हैं :

एक, वस्त्र का अन्तरराष्ट्रीय व्यापार मल्टी-फाइबर अरेंजमेंट (एम एफ ए) द्वारा विनियमित होता है। एम एफ ए ने वस्त्र के आयात की अधिकतम सीमा निर्धारित कर विकासशील देशों से वस्त्र के निर्यात में बड़े बाधक के रूप में काम किया है। विश्व व्यापार संगठन (डब्ल्यू टी ओ) की स्थापना के साथ इस व्यवस्था को 01 जनवरी, 2005 तक समाप्त करने का निर्णय लिया गया है। इससे भारत के वस्त्र उद्योग के विकास की असीम संभावनाएँ उत्पन्न होंगी।

दो, उपर्युक्त भाग 12.2.4 वस्त्र उद्योग में हाल के यथा सूचीबद्ध परिवर्तनों ने नीतिगत निर्णयों को प्रभावित किया है।

नई नीति के लक्ष्य इस प्रकार हैं :

i) परिधान और वस्त्र के निर्यात को वर्तमान 11 बिलियन डॉलर से बढ़ा कर 50 बिलियन डॉलर तक पहुँचाना।

ii) उद्योग की विभिन्न आवश्यकताओं के वित्तपोषण के लिए निजी क्षेत्र को विशेषीकृत वित्तीय व्यवस्था की स्थापना के लिए प्रोत्साहित करना।

iii) समेकित परिसरों और इकाइयों की स्थापना के लिए निजी क्षेत्र को प्रोत्साहित करना।

यह आशा की जाती है कि नई नीति से यह सुनिश्चित होगा कि वर्ष 2005 तक एम एफ ए के पूरी तरह से समाप्त हो जाने के बाद वस्त्र उद्योग अन्तरराष्ट्रीय प्रतिस्पर्धा के लिए पूरी तरह से तैयार हो जाएगा।

12.3 चीनी उद्योग

चीनी उद्योग भारत में वस्त्र उद्योग के बाद अर्थव्यवस्था में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाने वाला दूसरा सबसे बड़ा उद्योग है।

गन्ना की फसल और इसके प्रसंस्करण क्षेत्र में लगभग 36 मिलियन कुशल और अकुशल श्रमिकों को रोज़गार प्राप्त है। साथ ही, बड़ी संख्या में लोग चीनी के व्यापार और गन्ना तथा चीनी के परिवहन के कार्य में संलग्न हैं। चीनी उद्योग के कुछ उपोत्पाद कुछ अन्य उद्योगों जैसे, अल्कोहल, प्लास्टिक, कागज़, इत्यादि में कच्चेमाल के रूप में प्रयुक्त किए जाते हैं। आधुनिक चीनी उद्योग के लिए गन्ने की खेती के विस्तार ने कई ग्रामीण क्षेत्रों के सामाजिक-आर्थिक विकास और स्थानीय जनता की समृद्धि में योगदान किया है। इसके अलावा यह उद्योग केन्द्र और राज्य के राजकोषों में प्रतिवर्ष लगभग 1600 करोड़ रु. का भी योगदान करता है। भारत विश्व में सबसे बड़ा चीनी उपभोक्ता और उत्पादक देश के रूप में उभरा है।

12.3.1 पंचवर्षीय योजनाओं के दौरान विकास

नियोजित आर्थिक विकास के कार्यक्रम शुरू करने और उद्योग (विकास और विनियमन) अधिनियम, 1951 के प्रवर्तन के साथ चीनी उद्योग का विनियमित और नियोजित विकास होना संभव हुआ।

सरकार की लाइसेन्स नीति से भारतीय चीनी उद्योग की संरचना में दो महत्त्वपूर्ण परिवर्तन हुए:

i) चीनी उद्योग के लिए 1952 के बाद जो लाइसेन्स जारी किए गए उनमें से अधिकांश उष्ण कटिबंधीय प्रदेश (अर्थात् गुजरात, महाराष्ट्र, कर्नाटक, आंध्रप्रदेश, तमिलनाडु, केरल इत्यादि) के लिए थे जबकि इससे पूर्व चीनी उद्योग का विकास उप-उष्णकटिबंधीय प्रदेश (अर्थात् उत्तर प्रदेश, बिहार, मध्य प्रदेश, राजस्थान, उड़ीसा, असम और पश्चिम बंगाल) में हुआ था।

ii) सरकार की सहकारी संस्थाओं को प्रोत्साहित करने की सुविचारित नीति के कारण सहकारिता क्षेत्र में भी चीनी उद्योग का खूब विकास हुआ है।

विभिन्न योजनाओं के दौरान इस उद्योग का कार्य निष्पादन अत्यन्त ही उल्लेखनीय रहा है, जो निम्नलिखित तथ्यों द्वारा बिल्कुल स्पष्ट हो जाता है :

i) देश में चीनी मिलों की संख्या जो वर्ष 1950-51 में 139 थी बढ़ कर इस समय 572 हो गई है (सहकारिता क्षेत्र में 314, संयुक्त और निजी क्षेत्र में 188 और सार्वजनिक क्षेत्र में 70)

ii) चीनी का कुल उत्पादन जो 1950-51 में 11.34 लाख टन था (और 1931-32 में 1.5 लाख टन) बढ़कर 1999-2000 में लगभग 165 लाख टन हो गया है जिससे विश्व में सबसे बड़े चीनी उत्पादक के रूप में भारत का स्थान और पक्का हो गया है।

iii) पिछली शताब्दी के तीस के दशक के आरम्भ में जहाँ, देश की कुल गन्ना उत्पादन का मात्र 3 प्रतिशत चीनी उत्पादन होता है वहीं अब यह बढ़ कर 20 प्रतिशत हो गया है।

चीनी उद्योग की नियति में उतार-चढ़ाव आता रहा है। यद्यपि कि उत्पादन में वृद्धि की प्रवृत्ति बनी रही है, इसमें बीच-बीच में कमी भी आई है, जैसा कि नीचे तालिका 12.2 में देखा जा सकता है :

तालिका 12.2 : भारत में चीनी उत्पादन (लाख टन)

वर्ष	निर्गत	वर्ष	निर्गत
1990-91	120.47	1995-96	147.81
1991-92	132.77	1996-97	153.03
1992-93	105.62	1997-98	131.60
1993-94	98.00	1998-99	155.20
1994-95	126.10	1999-2000	165.00

वास्तव में, पिछले बीस वर्षों के दौरान चीनी उत्पादन में एक विशेष प्रवृत्ति का विकास हुआ है जिसमें अधिशेष उत्पादन से लाभप्रदता में कमी आती है और किसानों का बकाया बढ़ता है। इससे अगले मौसम में गन्ना उत्पादक कम गन्ना उपजाते हैं जिससे उत्पादन में गिरावट आती है। इसके बाद चक्र का दूसरा चरण आरम्भ हो जाता है।

इस संदर्भ में सरकार की नीति, घरेलू माँग की तुलना में आपूर्ति के समायोजन के लिए बारी-बारी से आयात और निर्यात की अनुमति देना रहा है।

12.3.2 चीनी उद्योग की वर्तमान समस्याएँ

वर्तमान स्थिति की निम्नलिखित विशेषताएँ हैं :

एक, पिछले दशक या इसके आस-पास के दौरान चीनी अर्थव्यवस्था की विशेषता चीनी की माँग और आपूर्ति के बीच भारी और आवर्ती असंतुलन रहा है। ऐक समय में भारी कमी और फिर अधिशेष के कारण बारी-बारी से उद्योग को नियंत्रित और नियंत्रण से मुक्त भी करना पड़ता है। नीति में जल्दी-जल्दी बदलाव ने न सिर्फ उद्योग के विकास अपितु कृषि अर्थव्यवस्था को भी काफी प्रभावित किया है। यह मूल्य समानता और देश में सीमित भूमि-संसाधन की समस्या के

दो, यद्यपि कि चीनी अर्थव्यवस्था को अगस्त 1998 से लाइसेन्स मुक्त कर दिया गया है, तथापि चीनी उद्योग अभी भी भारी नियंत्रण में है। गन्ना के लिए केन्द्र सरकार द्वारा निर्धारित सांविधिक न्यूनतम मूल्य (एस एम पी) और इस सांविधिक न्यूनतम मूल्य के अतिरिक्त राज्य सरकारों द्वारा निर्धारित राज्य सूचित मूल्य (एस ए पी) है। लेवी चीनी का मूल्य गन्ना के सांविधिक न्यूनतम मूल्य और औद्योगिक लागत और मूल्य ब्यूरो द्वारा यथा संस्तुत परिवर्तन लागतों के आधार पर जोन-वार (क्षेत्र-वार) निर्धारित किया जाता है। 'खुली बिक्री के लिए चीनी' के मूल्य पर कोई नियंत्रण नहीं है, स्थायित्व को बनाए रखने के लिए प्रत्येक माह में जारी किए जाने वाले कोटा को निर्धारित करके बाजार में इसकी आपूर्ति को विनियमित किया जाता है। सरकार द्वारा निर्यात कोटा निर्धारित किया जाता है और चीनी के निर्यात का काम नामांकित एजेन्सी द्वारा किया जाता है।

तीन, देश की सभी चीनी उत्पादक क्षेत्रों में रुग्णता का प्रभाव देखा जा सकता है।

12.3.3 मिशन मोड परियोजना

सरकार ने एक मिशन मोड परियोजना की स्थापना की है। इस परियोजना का लक्ष्य 30 मॉडल (आदर्श) चीनी कारखानों का विकास करना है। सरकार ने चीनी प्रौद्योगिकी मिशन की भी स्थापना की है तथा चीनी कारखानों के लिए दो आधुनिक प्रौद्योगिकियों की पहचान की है। विद्यमान चीनी मिलों में प्रौद्योगिकी अन्तराल की पहचान और उभरती हुई प्रौद्योगिकियों के लिए अनुसंधान और विकास समर्थन ने इस पूरी प्रक्रिया को अत्यावश्यक रूप से आगे बढ़ाया है।

बोध प्रश्न 1

1) भारतीय अर्थव्यवस्था में सूती वस्त्र उद्योग का महत्त्व बतलाइए।

.....

.....

.....

.....

.....

2) विगत पचास वर्षों के दौरान भारतीय सूती वस्त्र उद्योग की संरचना में क्या मुख्य परिवर्तन हुए हैं ?

.....

.....

.....

.....

.....

3) नई वस्त्र नीति 2000 की विशेषताएँ संक्षेप में बताएँ।

.....

.....

.....

.....

.....

4) पंचवर्षीय योजनाओं के दौरान चीनी उद्योग के विकास की रूपरेखा प्रस्तुत करें।

.....

.....

.....

.....

.....

5) भारत में चीनी उद्योग द्वारा सामना की जा रही प्रमुख समस्याओं का संक्षेप में उल्लेख कीजिए।

.....

.....

.....

.....

.....

12.4 लौह और इस्पात उद्योग

लौह और इस्पात उद्योग ने देश के समग्र औद्योगिक विकास को स्थायित्व प्रदान करने के लिए स्तम्भ का काम किया है क्योंकि यह उद्योगों के लिए अपरिहार्य बुनियादी आदान उपलब्ध कराता है। इस उद्योग से व्यापक पश्चानुबंध और अग्रानुबंध स्थापित होता है जो और अधिक औद्योगिकरण का मार्ग प्रशस्त करता है। भारत में इस उद्योग के विकास की अपार संभावनाएँ हैं। इस देश में इस उद्योग की नींव उन्नीसवीं शताब्दी के अंतिम दशकों में डाली गई थी। किंतु इसकी प्रगति अपेक्षाकृत धीमी रही। स्वतंत्रता प्राप्ति के समय भारत का इस्पात उत्पादन नगण्य था। हमारी पंचवर्षीय योजनाओं में, लौह और इस्पात उद्योग को सर्वोच्च प्राथमिकता दी गई है।

12.4.1 पंचवर्षीय योजनाओं के दौरान विकास

भारत में योजना के आरम्भ के समय तीन मुख्य इकाइयाँ, इस्पात का उत्पादन कर रही थीं। ये थीं : जमशेदपुर में टाटा आयरन एण्ड स्टील वर्क्स, आसनसोल में इंडियन आयरन एण्ड स्टील कंपनी और कर्नाटक में भद्रावती में मैसूर आयरन एण्ड स्टील वर्क्स इन तीनों इकाइयों की प्रतिवर्ष 1.7 मिलियन टन ढलुआ लोहा और 1 मिलियन टन इस्पात इन्गॉट उत्पादन करने की क्षमता थी। दूसरी, और उसके बाद की पंचवर्षीय योजनाओं में देश में लौह और इस्पात उद्योग के विस्तार के महत्त्वाकांक्षी कार्यक्रम तैयार किए गए। इस आयोग का अर्थव्यवस्था के सार्वजनिक क्षेत्र में जबर्दस्त विकास हुआ।

नई औद्योगिक नीति, 1991 ने वस्तुतः इस्पात उद्योग को लाइसेन्स से मुक्त कर दिया तथा निजी क्षेत्र को सिर्फ विदेशी मुद्रा प्रतिबद्धताओं के अध्यधीन परियोजनाएँ स्थापित करने की

अनुमति दे दी गई। इतना ही नहीं, धातुकर्म उद्योगों के अंतर्गत मदों की छः श्रेणियों में न सिर्फ विदेशी निवेशकों को भागीदारी की अनुमति प्रदान की गई अपितु इक्विटी भागीदारी की सीमा भी बढ़ा कर 51 प्रतिशत तक कर दी गई इसके साथ ही इस्पात के मूल्यों और वितरण पर से सभी प्रकार के नियंत्रण 16 जनवरी, 1992 से समाप्त कर दिए गए।

नियंत्रण प्रणाली के समाप्त होने के बाद की अवधि में लायड्स, निप्पन डेनरो, कल्याणी, मुकुन्द, रौनक समूह, ऊषा समूह, जिन्दल, लॉर्सन एण्ड टूब्रो और एम एम टी सी जैसे बड़े औद्योगिक प्रतिष्ठानों का इस क्षेत्र में पदार्पण हुआ और यह सभी बृहत् समेकित संयंत्रों की स्थापना कर रहे हैं।

निर्धारित क्षमता

इस समय देश में नौ समेकित इस्पात संयंत्र हैं- सात सार्वजनिक क्षेत्र में और दो निजी क्षेत्र में। सार्वजनिक क्षेत्र के इस्पात संयंत्र भारतीय इस्पात प्राधिकरण लिमिटेड (सेल) के स्वामित्व में हैं। सेल केन्द्रीय विपणन संगठन के रूप में भी कार्य करता है। इन इस्पात संयंत्रों की कुल निर्धारित् क्षमता 17.73 मिलियन टन है।

समेकित इस्पात संयंत्रों के अतिरिक्त, इस समय 18 अनुषंगी लघु-इस्पात संयंत्र (मिनी स्टील प्लांट) भी हैं जिनकी कुल क्षमता लगभग 10.44 मिलियन टन है। इन इस्पात संयंत्रों में इस्पात स्क्रैप पिघलाया जाता है तथा उच्च गुणवत्ता वाले इस्पात के उत्पादन के लिए इनका परिशोधन किया जाता है।

12.4.2 उत्पादन और उपभोग

इस्पात उद्योग को समग्र औद्योगिक विकास का मापक माना जाता है। भारत में 'तैयार इस्पात' का उत्पादन विभिन्न चरणों में बढ़ा है।

पहले चरण में, जो साठ के दशक के आरम्भ में समाप्त हुआ, कुल उत्पादन प्रतिवर्ष लगभग 2.5 मिलियन टन था। अस्सी के दशक के मध्य से उत्पादन बढ़ना शुरू हुआ जो 1983-84 में 6.14 मिलियन टन से बढ़कर 1989-90 में 13.00 मिलियन टन हो गया और पुनः 2000-01 में 31.32 मिलियन टन तक पहुँच गया।

भारत विश्व में इस्पात के दसवें सबसे बड़े उत्पादक के रूप में उभरा है जो फ्रांस, यू.के. और कनाडा से कहीं आगे है तथा यूक्रेन के ठीक बाद इसका स्थान है।

भारत में इस्पात उत्पादन का अधिकांश हिस्सा (लगभग 90 प्रतिशत) नरम इस्पात है जैसे स्ट्रक्चरल्स, रेल (पटरियाँ), शीट्स, प्लेट्स, बार और रॉड इत्यादि। मिश्र धातु और विशेष इस्पात का कुल उत्पादन में अत्यन्त ही कम अनुपात है।

भारत में इस्पात की प्रतिव्यक्ति खपत लगभग 23 कि. ग्रा. है जो विकसित देशों जैसे अमरीका, जर्मनी, कोरिया और जापान (लगभग 600 कि.ग्रा.) की तुलना में काफी कम (5 प्रतिशत से भी कम) है और 200 कि.ग्रा. के विश्व औसत का मात्र लगभग 11.5 प्रतिशत है।

तथापि, इस्पात के कम उत्पादन और खपत को इस तथ्य की पृष्ठभूमि में देखा जाना चाहिए कि भारत विकसित पश्चिम और विकासशील सुदूर पूर्व के देशों में अपने प्रतिस्पर्धियों की अपेक्षा लाभप्रद स्थिति में है। लौह अयस्क भण्डार के मामले में भारत का विश्व में चौथा स्थान है। इसके लौह अयस्क भण्डार के 10.3 बिलियन टन होने का अनुमान लगाया गया है और इसमें

लौह की मात्रा 60 प्रतिशत है। यहाँ पाए जाने वाले अधिकांश लौह अयस्क अच्छी किस्म के हैं जिससे अधिक लौह प्राप्त होता है और साथ ही यह कम कीमत पर उपलब्ध भी है अर्थात् 'सेल' को लगभग 20 डॉलर प्रति टन की दर पर लौह अयस्क मिलता है जबकि यह लागत अमरीका में 61 डॉलर, जर्मनी में 79 डॉलर और यूके में 70 डॉलर प्रति टन है। यहाँ कुशल श्रम सस्ता और सुलभ भी है। भारत में कुशल श्रमिक के लिए प्रति घंटा लागत 1 डॉलर बैठता है जबकि अमरीका में यह 20 डॉलर से भी अधिक पड़ता है। भारत में मज़दूरी लागत कुल लागत का 10 प्रतिशत बैठता है जबकि यूरोप और अमरीका में यह 20-30 प्रतिशत तक बैठता है। भारत में जहाँ श्रमिकों की कम उत्पादकता इन सभी लाभों को निष्प्रभावी कर देती है, को अपनी लाभप्रद स्थिति का सदुपयोग करना सीखना होगा।

12.4.3 उद्योग की वर्तमान समस्याएँ

भारत में सार्वजनिक क्षेत्र के इस्पात उद्योग अकुशल आयोजना, अत्यधिक नियंत्रण और उपयुक्त समन्वय की कमी का शिकार रहे हैं जिसके कारण निर्माण कार्य में विलंब हुआ और परिणामी लागत में वृद्धि हुई। हमें, दो मिलियन टन क्षमता के इस्पात संयंत्र का निर्माण कार्य पूरा करने में लगभग 8 वर्षों का समय लगता है जबकि जापान में चार मिलियन टन क्षमता के संयंत्र का निर्माण तीन वर्षों में ही पूरा कर लिया जाता है।

इसलिए हम इस्पात उद्योग के ठोस विकास के लिए निम्नलिखित सुझाव दे सकते हैं :

एक, इस्पात निर्माण के मुख्य कार्यकलाप पर ध्यान केन्द्रित किया जाए और गौण कार्यकलापों को संबंधित विशेषज्ञ संगठनों पर छोड़ दिया जाए।

दो, अर्धनिर्मित उत्पादों के उत्पादन में भारी कटौती की जाए।

तीन, अनुकूलतम धारणीय संरचनात्मक स्तर तक पहुँचने के लिए क्षमता विस्तार हेतु निवेश किया जाए।

चार, प्रौद्योगिकी का चयन ऐसा हो कि प्रत्यक्ष नियोजन की आवश्यकता कम पड़े जिससे प्रचालन संबंधी मितव्ययिता सुनिश्चित की जा सके (इसके लिए कार्मिकों को अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर नवीनतम प्रौद्योगिकियों की जानकारी होनी चाहिए) और मज़दूरी संरचना को उत्पादन दक्षता के साथ सम्बद्ध करना चाहिए।

पाँच, संयंत्र के स्वचालन के अलावा सूचना प्रौद्योगिकी पर आधारित कार्यालय स्वचालन, ताकि कम से कम कर्मचारियों द्वारा अधिक उत्पादकता के साथ कार्य निष्पादित कर लिया जाए।

छः, लौह और इस्पात सामग्रियों का निर्यात एजेण्टों के माध्यम से करने की बजाए विशेषीकृत डिविजन अथवा अनुषंगी (सब्सिडियरी) के माध्यम से सीधे किया जाए।

सात, नीतियों को बनाने में ग्राहकोन्मुखी दृष्टिकोण अपनाया जाए।

बोध प्रश्न 2

1) भारत में लौह और इस्पात उद्योग के विकास में सार्वजनिक क्षेत्र की भूमिका की जाँच कीजिए।

.....

.....

.....

.....

.....

2) भारत लौह और इस्पात के उत्पादन में अन्य कई देशों की तुलना में अनेक दृष्टि से लाभ की स्थिति में है, वर्णन कीजिए।

.....

.....

.....

.....

.....

3) भारत में इस समय इस्पात उद्योग द्वारा सामना की जा रही कुछ मुख्य समस्याओं का वर्णन संक्षेप में कीजिए।

.....

.....

.....

.....

.....

12.5 इंजीनियरी (अभियांत्रिक) उद्योग

भारत में इंजीनियरी उद्योग अपेक्षाकृत नया उद्योग है, जिसका विकास मुख्य रूप से स्वतंत्रता-प्राप्ति के पश्चात् हुआ। दूसरी और उसके बाद की योजनाओं में भारी-पूँजीगत-वस्तु-आधारित विकास रणनीति के स्वीकार किए जाने के बाद इस उद्योग ने गति पकड़ी।

उसके बाद से, भारत न सिर्फ विभिन्न प्रकार के इंजीनियरी उपकरणों के मामले में आत्म निर्भर बन गया है अपितु यह इंजीनियरी वस्तुओं-पूँजीगत वस्तुओं और टिकाऊ उपभोक्ता वस्तुओं दोनों का निर्यात भी कर रहा है। यह उद्योग संगठित क्षेत्र में सभी उद्योगों के बीच सबसे बड़े रोज़गार सृजनकर्त्ता के रूप में भी उभरा है। सभी उद्योगों के कुल रोज़गार का लगभग 30 प्रतिशत इस उद्योग से आता है। लगभग 40,000 करोड़ रुपये के निवेश से इंजीनियरी उद्योग राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था के प्राय: सभी क्षेत्रों के साथ अपने विविधिकृत अग्रानुबंध और पश्चानुबंध के माध्यम से आर्थिक विकास का मार्ग प्रशस्त करता है।

12.5.1 पंचवर्षीय योजनाओं के दौरान प्रगति

इंजीनियरी उद्योग में विकास इस तथ्य से देखा जा सकता है कि उद्योग के कुल उत्पादन में विगत पांच दशकों के दौरान 3000 गुणा से भी अधिक वृद्धि हुई है; वर्ष 1950-51 में यह मात्र 50 करोड़ रुपये था जो 1999-2000 में बढ़ कर 1,75,000 करोड़ रु. तक हो गया है।

सभी उद्योगों में मिलाकर इंजीनियरी उद्योग का योगदान निर्गत मूल्य में 33.1 प्रतिशत, रोज़गार में 28.1 प्रतिशत और निवेश में 32.2 प्रतिशत है जो काफी आकर्षक है।

इंजीनियरी उद्योग में विकास का एक अन्य पैमाना इस उद्योग के निर्यात की मात्रा में तीव्र वृद्धि है। इंजीनियरी वस्तुओं के निर्यात का मूल्य जो 1950-51 में मात्र 6 करोड़ रुपये था, से बढ़कर 1999-2000 में 21,503 करोड़ रु. की ऊँचाई तक पहुँच गया, यह उस वर्ष के दौरान भारत के कुल निर्यात का लगभग 13.2 प्रतिशत था।

इसके अतिरिक्त यह भी कहा जा सकता है कि यह उपलब्धि एक ओर विकसित देशों और दूसरी ओर नई औद्योगिकरण कर रहे देशों, जिनकी लागत कम, प्रौद्योगिकी आधुनिक तथा विपणन व्यवस्था बेहतर है, द्वारा अन्तरराष्ट्रीय बाजार में प्रस्तुत कड़ी प्रतिस्पर्धा के मद्देनजर और भी महत्त्वपूर्ण हो जाती है।

इंजीनियरी उद्योग का विकास इतना नियोजित है कि यह एक साथ समानरूप से महत्त्वपूर्ण दो कार्य निष्पादित कर रहा है :

i) इंजीनियरी उद्योग को टिकाऊ उपभोक्ता वस्तुओं और अर्थव्यवस्था के विविध क्षेत्रों द्वारा उपयोग किये जाने हेतु पूँजीगत माल, दोनों की बढ़ती हुई घरेलू जरूरतों को पूरा करना है।

ii) इंजीनियरी उद्योग को निर्यात के लिए पर्याप्त अधिशेष का भी सृजन करना है। इस तथ्य के मद्देनजर कि भारत अपने परम्परागत निर्यातों में पर्याप्त अधिशेष जुटाने की और अधिक आशा नहीं कर सकता है, इसलिए इंजीनियरी वस्तु उद्योग को इस बढ़ते हुए बोझ का वहन करना है।

12.5.2 उद्योग की वर्तमान समस्याएँ

इंजीनियरी उद्योग भी अन्य सभी उद्योगों की भांति क्षमता के अल्प उपयोग, उच्च लागत, आदानों जैसे कच्चे मालों, विद्युत, कोयला, परिवहन, इत्यादि की अविश्वसनीय आपूर्ति, अद्यतन तकनीकी ज्ञान का अभाव, वित्तीय और विपणन संबंधी समस्याएँ, बढ़ती हुई रुग्णता इत्यादि समस्याओं से ग्रस्त हैं। इसके अतिरिक्त भारतीय इंजीनियरी निर्यात उद्योग एक और विशिष्ट समस्या से ग्रस्त है। यह अन्तरराष्ट्रीय आर्थिक परिवेश से उत्पन्न हुआ है।

इस तथ्य के बावजूद कि इंजीनियरी वस्तुओं के कुल विश्व निर्यातों में विकासशील देशों का हिस्सा नगण्य है, और भारत का इसमें अत्यन्त ही कम मात्र 0.13 प्रतिशत हिस्सा है अधिकांश विकसित देशों द्वारा अन्य विकासशील देशों से इंजीनियरी वस्तुओं के आयात पर संरक्षणवादी प्रतिबंध लगाया जा रहा है।

विकसित अर्थव्यवस्थाओं में संरक्षणवादी उपायों के विस्तार से उन विकासशील देशों पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ेगा जिन्होंने इन उद्योगों में न सिर्फ आयात प्रतिस्थापन्न के लिए अपितु निर्यात के लिए भी निवेश किया है। उस समय जब विकासशील देशों ने विकसित देशों को अपना माल भेजना शुरू किया है संरक्षणवादी उपायों के लागू किए जाने से उनकी अर्थव्यवस्थाओं पर अत्यन्त गंभीर प्रभाव पड़ेगा।

संरक्षणवाद कई प्रकार से, मुख्यत: गैर-टैरिफ (प्रशुल्क) बाधाओं, जैसे सरकार की खरीद नीतियों, डम्पिंग, शुल्कों के मूल्यांकन की पद्धति प्रशासनिक और तकनीकी विनियमों, विशेषकर स्वच्छता के

क्षेत्र में, पैकेजिंग विनियम तक, इत्यादि के रूप में लागू किए जा रहे हैं। ग़ैर टैरिफ बाधाओं की व्यापकता संबंधी जटिताएँ उन्हें विनियमित करने और सुलझाने का कार्य अत्यन्त दुरूह कर देती हैं।

उदारीकरण और इंजीनियरी उद्योग

इंजीनियरी उद्योग का पूँजीगत वस्तु खंड हाल के नीतिगत परिवर्तनों और आर्थिक सुधारों के परिणामस्वरूप अत्यन्त ही संकटपूर्ण दौर से गुजर रहा है। यह उद्योग उदारीकरण से उत्पन्न निम्नलिखित परिस्थितियों का सामना कर रहा है :

i) नई एक्जिम नीति ने नई मदों के लिए लाइसेन्स पद्धति को समाप्त कर दिया है। इसलिए मशीनों के आयात के लिए किसी सरकारी मंजूरी की आवश्यकता नहीं रह गई है। पुन:, आयातित पूँजीगत वस्तुओं पर अतिरिक्त अथवा प्रतिकारी शुल्कों का बोझ नहीं डाला गया है।

ii) नई मशीनों के अलावा सरकार द्वारा पुरानी मशीनों के आयात की अनुमति देने की व्यवस्था से घरेलू विनिर्माताओं के लिए एक अन्य खतरा पैदा हो गया है।

iii) वैश्विक बाजार दशाओं के परिणामस्वरूप विदेशों से मशीनों की बड़े पैमाने पर 'डम्पिंग' संभव हो गई है जिसका घरेलू विनिर्माताओं पर अत्यधिक प्रतिकूल प्रभाव पड़ रहा है।

इंजीनियरी उद्योग को प्रतिस्पर्धा और बाजार शक्तियों की चुनौतियों का सामना करने के लिए पुनर्संरचना करनी पड़ेगी जो कि नई उभर रही आर्थिक परिवेश की मुख्य विशेषता है।

सुझाव

इंजीनियरी उद्योग की पुन:संरचना में कई मुद्दे निहित हैं :

i) यह एक ऐसा उद्योग भी है, जिसमें लगभग प्रत्येक उत्पाद-व्यवसाय में सार्वजनिक क्षेत्र और निजी क्षेत्र की इकाइयाँ एक दूसरे के साथ प्रतिस्पर्धा कर रही हैं।

ii) यह एक ऐसा उद्योग भी है, जिसमें अनेक उत्पाद-व्यवसायों में बृहत्, मध्यम और लघु क्षेत्र की इकाइयाँ एक साथ विद्यमान हैं। एक सीमा तक इंजीनियरी उद्योग में अनेक लघु इकाइयाँ बृहत् इकाइयों की अनुषंगी हैं, किंतु एक ही विशिष्टता वाले उत्पादों उदाहरणार्थ मशीन टूल्स के लिए विभिन्न मूल्य श्रृंखला के उत्पादों की आपूर्ति कर रही बृहत् और लघु इकाइयों के बीच उत्पाद विभेदीकरण और खंडीकरण भी है।

iii) यह एक ऐसा उद्योग है जिसमें उत्पाद की संश्लिष्टता (सॉफिस्टिफिकेशन) पर आधारित एक ही प्रकार के उत्पादों का निर्यात और आयात दोनों होता है।

iv) यह एक ऐसा उद्योग है जिसमें हाल में महत्त्वपूर्ण आविष्कार और बाजार माँग की नई उभर रही आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए उत्पादन प्रौद्योगिकी में अनुकूलनीयता देखी गई है फिर भी साथ ही यह प्रौद्योगिकी में परिवर्तन और उसका उन्नयन करने में धीमी रही है।

उपर्युक्त के मद्देनजर इंजीनियरी उद्योग को सुदृढ़ करने के लिए निम्नलिखित सुझाव दिए जा सकते हैं :

i) देश में उद्योग की संरचना के अध्ययन के लिए और जहाँ कहीं भी राष्ट्रीय हित में विलय और समामेलन आर्थिक रूप से वांछनीय हो के संवर्द्धन के लिए सरकार और उद्योग से अलग एक संगठन का गठन करना चाहिए।

ii) अनुसंधान संस्थानों और इंजीनियरी उद्योगों के बीच संवादहीनता को समाप्त करना चाहिए।

iii) विदेशी सहयोग के संबंध में सरकारी नीति की और समीक्षा करनी चाहिए ताकि देश में नई प्रौद्योगिकी का निरंतर अन्तर्वाह सुनिश्चित हो सके।

iv) सभी प्रकार की तकनीकी परामर्शदात्री संगठनों को अधिकतम संभव प्रोत्साहन दिया जाना चाहिए ताकि प्रौद्योगिकी के क्षेत्र में उच्चस्तरीय आत्मनिर्भरता प्राप्त की जा सके।

v) आयात नीति को यथार्थवादी होना चाहिए, ताकि संयंत्र और मशीनों का निर्धारित से कम उपयोग और उत्पादन में अलाभ से बचा जा सके।

vi) औद्योगिक शांति और बढ़ी हुई उत्पादकता जिन्हें सरकार और ट्रेड यूनियनों के सहयोग से चरितार्थ किया जा सकता है, विकास की पूर्व शर्त है।

vii) वर्तमान हतोत्साही स्थिति में सुधार के लिए ईंधन और विद्युत की बढ़ती हुई लागतों पर अधिकतम सीमा लगाना एक अनिवार्य शर्त का प्रतीक है।

बोध प्रश्न 3

1) आर्थिक आयोजना की अवधि के दौरान भारत में इंजीनियरी उद्योग के विकास का इतिहास बताइए।

.....

.....

.....

.....

.....

2) भारत में इंजीनियरी उद्योग द्वारा सामना की जा रही महत्त्वपूर्ण समस्याओं का उल्लेख कीजिए।

.....

.....

.....

.....

.....

3) भारत में इंजीनियरी उद्योग को सुदृढ़ बनाने के लिए सुझाव दीजिए।

.....

.....

.....

.....

.....

12.6 अन्य प्रमुख उद्योग

भारत में अन्य प्रमुख बृहत् उद्योगों में निम्नलिखित उद्योगों का उल्लेख किया जा सकता है : सीमेण्ट, कागज़, पेट्रोरसायन, और उर्वरक

12.6.1 सीमेन्ट उद्योग

सीमेन्ट निर्माण उद्योग का एक महत्त्वपूर्ण अवयव है। इसका विनिर्माण सबसे पहले चेन्नई में 1904 में शुरू किया गया था। इस समय, 300 से अधिक सीमेन्ट कारखाने हैं जिनकी कुल अधिष्ठापित क्षमता 83 मिलियन टन प्रतिवर्ष है। सीमेण्ट उद्योग अपनी पूरी क्षमता पर कार्य कर रहा है तथा इसके द्वारा वार्षिक स्तर पर 80 मिलियन टन उत्पादन का अनुमान लगाया गया है।

सीमेन्ट उद्योग में कच्चे माल के रूप में चूना पत्थर, मृत्तिका (क्ले), शेलकोयला और जिप्सम का मुख्य रूप से प्रयोग होता है। सीमेन्ट के कारखाने भारी कच्चे मालों के परिवहन लागत को कम करने की दृष्टि से कच्चे माल के स्रोतों के पास ही अवस्थित होते हैं। तमिलनाडु, मध्य प्रदेश, गुजरात, बिहार, राजस्थान, कर्नाटक और आन्ध्र प्रदेश सीमेन्ट के अग्रणी उत्पादक हैं।

सीमेन्ट का वितरण अत्यन्त ही विषम है। सबसे पहले महत्त्वपूर्ण सीमेन्ट विनिर्माण कटिबंध बिहार से मध्य प्रदेश और उसके बाद दक्षिण राजस्थान तक फैला हुआ है। इस कटिबंध में सीमेन्ट उद्योग के लिए कच्चा माल विन्ध्य, कैमूर और राजमहल क्षेत्रों, 'स्लज (अवपंक) उर्वरक संयंत्रों से और धातु मल (स्लेग) लौह और इस्पात संयंत्रों से प्राप्त होता है। देश में बृहत् और लघु सीमेन्ट संयंत्र दोनों, बड़ी मात्रा में सीमेन्ट का उत्पादन करते हैं।

12.6.2 कागज़ उद्योग

भारत में कागज़ उद्योग अत्यन्त ही पुराना है। प्राचीन काल में लोग लिखने के लिए भूर्जपत्र जो भूर्जवृक्ष का छाल होता है, का उपयोग करते थे। कागज़ का पहला कारखाना 1832 में पश्चिम बंगाल में श्रीरामपुर में स्थापित किया गया था। किंतु यह चल नहीं सका। 1870 में कोलकाता के निकट बालीगंज में एक नया उद्यम स्थापित किया गया।

पेपर और पेपर बोर्ड उद्योग का नियोजित विकास स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात् शुरू हुआ। वर्ष 1951 में 17 पेपर मिल थीं और उनकी अधिष्ठापित क्षमता 1.37 लाख टन थी। कागज़ और संबंधित उत्पादों की बढ़ती हुई माँग के कारण इसका तीव्र विकास हुआ। इस समय, पेपर मिलों की संख्या 300 से भी अधिक है; पेपर और पेपर बोर्ड का कुल उत्पादन प्रतिवर्ष करीब 40 लाख टन तक है।

नेपानगर में नेशनल न्यूज़प्रिंट एण्ड पेपर मिल देश की एक मात्र इकाई है जो न्यूज़प्रिंट का उत्पादन करती है।

पेपर और पेपर बोर्ड का उत्पादन घरेलू माँग से कम है। माँग के बड़े हिस्से को आयात द्वारा पूरा किया जाता है।

कागज़ उद्योग में मुख्य रूप से बाँस, सवाई और सलाई घास, लुग्दी में डालने वाला रद्दी, बेकार कागज़ और लुगदी कच्चेमाल के रूप में उपयोग किए जाते हैं।

कागज़ उद्योग की अवस्थिति कच्चे माल की उपलब्धता से अधिक और बाजार से कम प्रभावित होती है।

पश्चिम बंगाल में इस उद्योग की स्थापना के लिए अनुकूल दशाएँ मौजूद हैं। पश्चिम

बंगाल में कागज़ उद्योग बाँस पर आधारित है जो स्थानीय तौर पर उपलब्ध है अथवा असम, उड़ीसा और बिहार से प्राप्त किए जाते हैं। टीटानगर, काकिनाडा, नैहाटी, कोलकाता और मिरलाग्राम आदि पश्चिम बंगाल में कागज़ विनिर्माण के कुछ महत्त्वपूर्ण केन्द्र हैं। आन्ध्र प्रदेश में सिरपुर और राजामुन्द्री महत्त्वपूर्ण केन्द्र हैं। महाराष्ट्र भी पेपर और पेपर बोर्ड का अग्रणी उत्पादक है।

अन्य राज्यों जहाँ कागज़ के कारखाने स्थित हैं में मध्य प्रदेश, कर्नाटक, उत्तर प्रदेश, बिहार, हरियाणा, तमिलनाडु, गुजरात, उड़ीसा और केरल के नाम लिए जा सकते हैं। किंतु पश्चिम बंगाल और महाराष्ट्र के दो राज्यों में इनका घनत्व अधिक है।

12.6.3 पेट्रो रसायन उद्योग

पेट्रोरसायन उद्योग को कच्चा माल पेट्रोलियम उत्पादों से प्राप्त होता है। पेट्रोरसायन की अपनी उत्कृष्ट विशेषता है जिसके कारण यह तेज़ी से अनेक परम्परागत कच्चे मालों, जैसे लकड़ी, काँच और धातु का स्थान ले रहा है। इन सामग्रियों का उपयोग घरेलू, औद्योगिक और कृषि प्रयोजनों के लिए होता है। प्लास्टिक सबसे महत्त्वपूर्ण पेट्रोरसायन है। इसने विश्व में विभिन्न क्षेत्रों में क्रांतिकारी परिवर्तन कर दिया है। उर्वरक एक अन्य उदाहरण है।

पेट्रोरसायन उद्योग को मुख्य रूप से प्लास्टिक (पॉलीथीन, पी वी सी, पॉलिस्टीरीन, पॉलिप्रोपिलीन), सिन्थेटिक फाइबर (पॉलिएस्टर, नायलोन और एक्रिलिक), सिन्थेटिक रबर (स्टीरीन, बूटाडाइन) और प्लास्टिक, सिन्थेटिक फाइबर, रंजक द्रव्यों, कीटनाशक, सिन्थेटिक डिटर्जेंट और फार्मास्यूटिकल्स के लिए कच्चे माल के रूप में सिन्थेटिक ऑर्गेनिक रसायनों के समूह में रखा जा सकता है।

भारत में पेट्रोरसायन उद्योग ट्रॉम्बे और मुम्बई के निकट थाणा-बेलापुर क्षेत्र में अवस्थित है। पश्चिम बंगाल में हल्दिया में भी एक पेट्रोरसायन परिसर अवस्थित है। अब नए संयंत्रों की स्थापना मुख्य रूप से तेल शोधकों के निकट की जा रही है क्योंकि वे पेट्रो उप-उत्पाद उपलब्ध कराते हैं।

पेट्रोरसायन उद्योग को कम मूल्य वाले आयातित मालों से कड़ी प्रतिस्पर्धा का सामना करना पड़ रहा है। विश्व के दूसरे भागों, जैसे एशिया प्रशान्त क्षेत्र में यह उद्योग बड़ी मात्रा में उत्पादन के कारण मंदी की मार झेल रहा है। इस उद्योग के विस्तार और विकेन्द्रीकरण की योजनाओं को टाला जा रहा है। लाभ का स्तर कम होने के कारण संसाधनों का सृजन भी कम हो रहा है।

12.6.4 उर्वरक उद्योग

स्वतंत्रता के समय उर्वरक उद्योग का अस्तित्त्व नहीं के बराबर था। स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात् देश में उर्वरक का उत्पादन बढ़ाने के लिए भगीरथ प्रयास किया गया। उर्वरक फसल की उपज के लिए महत्त्वपूर्ण पोषक है और इसलिए राष्ट्रीय आर्थिक विकास में इसका महत्त्वपूर्ण स्थान।

उत्पादन

साठ के दशक के आरम्भ में जब से शिवरामन समिति ने उर्वरक के बढ़े हुए उत्पादन, कुशल वितरण और उपयोग की आवश्यकता को स्वीकार किया है तब से विपणन, मूल्य निर्धारण एवं

आपूर्ति और वितरण प्रबन्धों इत्यादि समेत विभिन्न क्षेत्रों में राजकीय नीतियों/प्रशासनिक कार्यवाहियों द्वारा भारतीय उर्वरक उद्योग का तीव्र विकास हुआ है। परिणामस्वरूप, अधिष्ठापित क्षमता में, 1960-61 के मात्र 0.35 मिलियन टन से 13.48 मिलियन टन तक व्यवस्थित वृद्धि हुई है। वर्ष 2000-01 के दौरान कुल वास्तविक उत्पादन अधिष्ठापित क्षमता को पार कर गया और इसके 15.25 मिलियन टन होने का अनुमान लगाया गया है।

विश्व में भारत को नाइट्रोजनी उर्वरकों का चौथा सबसे बड़ा उत्पादक होने का विशेष स्थान प्राप्त है। उर्वरक उद्योग में कुल निवेश लगभग 93 बिलियन रु. है जिसके कारण इस्पात और इंजीनियरी उद्योगों के बाद देश में इसका तीसरा स्थान है। वस्तुत: यह भारत के रसायन क्षेत्र का सबसे बड़ा संघटक और अभी हाल तक तीव्र रूप से विकास कर रहे उद्योगों में था।

सरकार के नियंत्रण के प्रभाव

तथापि, उर्वरक के घरेलू उत्पादन में इस असाधारण विकास के बावजूद भी इसकी उपलब्धता आवश्यकता से कम पड़ती है। घरेलू माँगों का बहुत बड़ा हिस्सा अभी भी आयात द्वारा पूरा किया जा रहा है तथापि उर्वरक की कुल उपलब्धता में आयात का हिस्सा 1951-52 में 57.1 प्रतिशत और 1960-61 में 71.6 प्रतिशत से घट कर 2000-01 में लगभग 13 प्रतिशत हो गया है।

घरेलू उत्पादन कई कारकों के कारण बाधित हैं इनमें से कुछ प्रमुख निम्नलिखित हैं :

क) देश में कच्चे मालों की अपर्याप्त उपलब्धता; और

ख) प्राकृतिक गैस का उच्च मूल्य निर्धारण- भारत में यह मूल्य 1.7 डॉलर और 2.5 डॉलर प्रतिमिलयिन बीटीयू (Btu) के बीच घटता बढ़ता रहता है, जबकि रूस में यह 0.3 डॉलर खाड़ी में औसत 0.5 डॉलर और मलेशिया में यह 1 डॉलर है।

बोध प्रश्न 4

1) निम्नलिखित उद्योगों में से किसने सर्वप्रथम अपना उत्पादन सन् 1904 में चेन्नई में प्रारंभ किया?

   अ) सीमेन्ट उद्योग

   ब) कागज़ उद्योग

   स) उर्वरक उद्योग

   द) पेट्रो रसायन उद्योग

2) कोलकाता के निकट स्थित बालीगंज जाना जाता है

   अ) सीमेन्ट प्लांट के लिए

   ब) प्रथम चीनी मिल के लिए

   स) प्रथम कागज़ मिल के लिए

   द) प्रथम उर्वरक प्लांट के लिए

3) निम्नलिखित में से कौन एक उद्योग स्वतंत्रता प्राप्ति के समय नहीं था?

अ) सीमेंट

ब) सूती वस्त्र

स) इस्पात और स्टील

द) उर्वरक

4) रिक्त स्थान की पूर्ति करें।

i) भारत का नाइट्रोजनीकृत उर्वरक के उत्पादन में विश्व में ..... स्थान है। (पाँचवाँ/चौथा)

ii) भारत में पेट्रोरसायन उद्योग ..... में स्थित है। (मुम्बई/दिल्ली)

12.7 सारांश

हमारा 'नियति के साथ वायदा' की शुरुआत अर्थव्यवस्था के प्रचुर औद्योगिकरण पर बल के रूप में हुआ था। आर्थिक आयोजना की शुरुआत के समय भारत में उपभोक्ता वस्तु उद्योगों का नाममात्र अस्तित्त्व था; यह बड़े पैमाने पर कृषि निर्गत जैसे कपास और जूट की उपलब्धता के अनुरूप था किंतु पूर्ण आर्थिक स्वतंत्रता के माध्यम के रूप में आत्म निर्भरता का लक्ष्य प्राप्त करने का इच्छुक राष्ट्र उपभोक्ता वस्तु उद्योगों के कमजोर आधार पर आत्म-धारणीय विकास की आशा नहीं कर सकता है। और इसलिए हमारी योजनाओं में ऐसे ही उद्योगों जैसे भारी इंजीनियरी, लौह और इस्पात, सीमेन्ट, मशीन टूल्स और अन्य पूँजीगत वस्तुओं के विकास पर मुख्य रूप से जोर दिया गया। प्रौद्योगिकीय प्रगति ने पेट्रोरसायन उद्योग को उभरते हुए देखा; भारत इस क्षेत्र में भी पीछे नहीं रह सकता था। हाल के वर्षों में पेट्रोरसायन उद्योग ने तीव्र प्रगति किया है।

उद्योगों के प्रत्येक समूह की अपनी अन्तर्निहित संभावना है और इसी प्रकार प्रत्येक उद्योग को आम रूप से अर्थव्यवस्था द्वारा और विशेष रूप से उस उद्योग द्वारा सामना की जा रही विभिन्न समस्याओं से दो-चार होना पड़ता है।

12.8 शब्दावली

जोखिम पूँजी : अज्ञात उद्यमियों द्वारा संवर्द्धित अधिक जोखिम वाले उद्यमों के लिए दीर्घकालीन वित्त

उपादान निधि : एक क्षेत्र अथवा उद्योग में उत्पादन के उपादानों की उपलब्धता का स्तर

अचल आस्ति : किसी कंपनी की ग़ैर-वित्तीय पूँजीगत आस्तियाँ जो अपेक्षाकृत स्थायी और किसी विशेष उत्पादक प्रक्रियाओं के लिए विशिष्ट है, और जिसका लागत सामान्यतया कुछ अवधि के प्रचालन के पश्चात् ही पुन: प्राप्त करने योग्य है।

अविभाज्यता : उत्पादन के उपादान अथवा वस्तु की विशेषता जो कतिपय न्यूनतम स्तर से नीचे इसके उपयोग को रोकता है।

लेवी चीनी : चीनी उत्पादन का वह अंश जो सरकार को निर्धारित मूल्यों पर दिया जाता है।

सिन्थेटिक उत्पादक : कपास और जूट वस्त्रों के वे उत्पादक जो प्राकृतिक रेशों के स्थान पर मानव निर्मित देशों का उपयोग करते हैं। चीनी उत्पादन का वह अंश जो सरकार को निर्धारित मूल्यों पर दिया जाता है।

बहिर्गमन (एक्जिट) नीति : उन दशाओं का निर्धारण जिसमें एक औद्योगिक इकाई अपना प्रचालन भले के लिए बंद कर सकती है।

क्षमता का उपयोग : उत्पादन की प्रक्रिया में अधिष्ठापित उपादान संसाधनों के उपयोग का स्तर।

क्षमता आधिक्य : जब फर्म अनुकूलतम स्तर से नीचे उत्पादन करता है।

कुल उपादान उत्पादकता की वृद्धि दर : उत्पादन की पद्धति में, सभी आदानों के अपरिवर्तित रहने पर, सुधारों के परिणामस्वरूप निर्गत में होने वाली वृद्धि की मात्रा।

12.9 कुछ उपयोगी पुस्तकें एवं संदर्भ

दि हिन्दू, *सर्वे ऑफ इंडियन इण्डस्ट्री (वार्षिक)*, नई दिल्ली।

भारत सरकार, *आर्थिक सर्वेक्षण (वार्षिक)*।

भारतीय रिजर्व बैंक, *रिपोर्ट ऑन करेन्सी एण्ड फाइनेन्स (वार्षिक)* भारत सरकार, नई दिल्ली।

योजना आयोग, *पंचवर्षीय योजनाएँ* (पहली योजना से प्रारूप दसवीं योजना तक) भारत सरकार, नई दिल्ली।

फिक्की, *वार्षिक प्रतिवेदन*, सी. आई. आई., नई दिल्ली।

सी आई आई, *वार्षिक प्रतिवेदन*, फिक्की, नई दिल्ली।

एसोचेम, *वार्षिक प्रतिवेदन*, नई दिल्ली।

आई सी आर ए, *मॉमग्राफ्स एण्ड रिपोर्ट्स ऑन स्टील एण्ड सीमेन्ट इण्डस्ट्रीज*, नई दिल्ली।

बाला, एम., (2003). *सीमेण्ट इण्डस्ट्री इन इंडिया: पॉलिसी, स्ट्रकचर एण्ड पर्फोमेन्स*, शिप्रा पब्लिकेशंन्स, दिल्ली।

आई. सी. धींगरा, (2001). *दि इंडियन इकनॉमी, एनवायरनमेंट एण्ड पॉलिसी*, सुल्तान चंद, नई दिल्ली।

12.10 बोध प्रश्नों के उत्तर अथवा संकेत

बोध प्रश्न 1

1) उपभाग 12.2.1 देखिए।

2) उपभाग 12.2.2 देखिए।

3) उपभाग 12.2.5 देखिए।

4) उपभाग 12.3.1 देखिए।

5) उपभाग 12.3.2 देखिए।

बोध प्रश्न 2

1) उपभाग 12.4.1 देखिए।

2) उपभाग 12.4.1 देखिए।

3) उपभाग 12.4.2 देखिए।

बोध प्रश्न 3

1) उपभाग 12.5.1 देखिए।

2) उपभाग 12.5.2 देखिए।

3) उपभाग 12.5.3 देखिए।

बोध प्रश्न 4

1) अ

2) ब

3) ब

4) (i) चौथा (ii) मुम्बई